दिल्ली के सरकारी स्कूलों की दशा: एक बानगी

साधना सक्सेना

शिक्षा व्यवस्था को बेहतर बनाने के नाम पर चलाई गई तमाम योजनाओं एवं कार्यक्रमों के दसियों साल और शिक्षा के अधिकार को लागू हुए तीन साल पूरे हो चुकने के बावजूद सरकारी स्कूलों की दशा अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुंच पाई है। यह लेख आंकड़ों के जरिए शिक्षा की पेश की जा रही खुशनुमा तस्वीर के बरक्स जमीनी हकीकत को समाने रखता है और उसके कारणों को समझने का प्रयास करता है।

विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध स्कूली आंकड़ों को देखें तो पता चलता है कि पिछले एक-डेढ़ दशक में आरंभिक स्तर (कक्षा 1 से 8 तक) की स्कूली शिक्षा में बहुत प्रगति हुई है। कुछ मुश्किल इलाकों को छोड़कर आठवीं तक की शिक्षा सभी बच्चों तक पहुंच पाई है। ऐसा सर्व शिक्षा अभियान की समीक्षा के लिए गठित सत्रहवें ज्वाइंट रिव्यू मिशन (जेआरएम, संयुक्त समीक्षा मिशन) 2013 और डीआईएसई (न्यूपा) के द्वारा एकत्रित नामांकन के आंकड़ों से साफ जाहिर होता है। कई राज्यों में नामांकन दर 100 प्रतिशत से भी ज्यादा है और अधिकतर राज्यों में यह 80 से 90 प्रतिशत तक है। सर्व शिक्षा अभियान के दौरान बड़ी संख्या में नए शाला भवनों का निर्माण हुआ है या नए कमरे जोड़े गए हैं। सरकारी गोष्ठियों में अब यह कहा जाता है कि नामांकन और पहुंच की दृष्टि से सर्व शिक्षा अभियान के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा चुका है, बच्चे स्कूल पहुंचा दिए गए हैं और अब गुणवत्ता के मसलों पर ध्यान देने की जरूरत है। मार्च में शिक्षा के अधिकार की तीसरी वर्षगांठ पर शिक्षा राज्य मंत्री, शशि थरूर, ने भी यही बात एक टेलीवीजन साक्षात्कार के दौरान बहुत गर्व से कही थी। अगले चरण यानी 10वीं तक स्कूली शिक्षा के सर्वव्यापीकरण की पहल भी राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के साथ शुरू हो चुकी है। बेशक ये उपलब्धियां महत्त्वपूर्ण हैं परन्तु यह भी जरूरी है कि राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय आंकड़ों के साथ-साथ शाला स्तरीय जमीनी हकीकत पर भी नजर डाली जाए।

इस लेख में मैं दिल्ली के कुछ सरकारी स्कूलों की दशा की एक बानगी दिखाते हुए आंकड़ों द्वारा गढ़ी गई छवि के कमजोर या छिपे हुए पक्षों को सामने लाने का प्रयास करूंगी। इस संदर्भ में लेख के अन्त में मैं कुछ सवाल सामने रखूंगी जो आंकड़ों में प्रदर्शित शिक्षा की उपलब्धियों के पार जाने का आग्रह करते हैं।

दिल्ली के सरकारी स्कूलों का, खासतौर से दिल्ली की घनी आबादी वाले क्षेत्रों जैसे किंग्सवे कैम्प, बुराड़ी, नत्थूपुरा, त्रिलोकपुरी, कल्याणपुरी, खोड़ा, ढका, जहांगीरपुरी, इत्यादि के सर्वोदय विद्यालयों का जायजा लें तो साफ दिखता है कि नामांकन दर बढ़ी है। पर स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने की दर और संसाधनों की उपलब्धता की गति मेल नहीं रख पाई है। संसाधनों का अर्थ स्कूल

की इमारत और बढ़े हुए कमरों की संख्या मात्र से नहीं है। वैसे जिन तीन स्कूलों की चर्चा मैं यहां कर रही हूं वहां नए कमरे या इमारत, दोनों नदारद हैं। संसाधनों में बैठने की जगह, कक्षा का माहौल, प्रशिक्षित शिक्षक और स्कूलों में उनके लिए पर्याप्त व्यवस्थाएं, शौचालयों और पीने के पानी की जमीनी हकीकत, ब्लैकबोर्ड, प्रयोगशालाएं, पुस्तकालय, इत्यादि सभी बुनियादी सुविधाएं शामिल हैं। यह बात भी ध्यान में रखना जरूरी है कि सरकारी स्कूलों की भी कई श्रेणियां हैं जैसे, दिल्ली में, नवोदय विद्यालय, केन्द्रीय विद्यालय और प्रतिभा विकास विद्यालय है जो शिक्षा के अधिकार के दायरे से बाहर हैं और जिनमें बेहतर सुविधाएं हैं। परन्तु इन विद्यालयों में प्रवेश मात्र कुछ चुनिंदा विद्यार्थियों को मिलता है। अधिकतर विद्यार्थी सर्वोदय विद्यालयों में ही प्रवेश पाते हैं जिनमें बुनियादी सुविधाओं का अभाव है। शिक्षा का अधिकार कानून बनने के बावजूद भी सरकारी व्यवस्था की इस असमानता और गैर-बराबरी पर शिक्षाविदों में खामोशी रही है।

यहां मैं लड़कियों के तीन सर्वोदय विद्यालयों के हालात सामने रख रही हूं जो मैंने इसी वर्ष यानी शिक्षा के अधिकार कानून के तीसरे वर्ष में देखे हैं। इन स्कूलों में से एक स्कूल में मैं करीब 2 हफ्तों तक जाती रही, दूसरे स्कूल में चार महीनों तक गई और तीसरे स्कूल में एक ही बार गई परन्तु वहां की प्रिंसिपल से विस्तृत चर्चा करके वहां की परिस्थिति को समझने का प्रयास किया। पहला और दूसरा स्कूल उत्तरी दिल्ली में स्थित है। तीसरा स्कूल पूर्वी दिल्ली में है। तीसरा और चौथा स्कूल कक्षा 1 से 12 तक है जबकि पहला और दूसरा स्कूल कक्षा 6 से 12 तक है।

लेखक

साधना सक्सेना

दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग में पढ़ाती हैं। किशोर भारती संस्था में कार्य करते हुए विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें बनाने का लम्बा अनुभव है।

स्कूलों की दशा

दिसम्बर की एक ठण्डी सुबह जब मैं उत्तरी दिल्ली के पहले स्कूल में पहुंची तो प्रार्थना खत्म ही हुई थी और सभी लड़कियां जमीन पर उकड़ू बैठी हुई थीं क्योंकि जमीन गीली थी। घोषणाएं खत्म होने के बाद वे लाइनों में अपनी-अपनी कक्षाओं तक पहुंचीं। कक्षा के कमरों के बाहर बरामदे में खड़ी होकर मैं विद्यार्थियों के बैठ जाने का इंतजार कर रही थी। अचानक स्कूल की एक तरफ से बहुत तेज दुर्गन्ध आना शुरू हुई और चारों तरफ फैल गई। दुर्गन्ध इतनी तेज थी कि मुझे उबकाई आने लगी। मैंने देखा कि जिस तरफ से दुर्गन्ध आ रही थी वहां स्कूल के शौचालयों को धोया जा रहा था। मैंने अपने पास खड़ी एक अतिथि शिक्षिका से पूछा कि यह दुर्गन्ध धुलाई शुरू होने से पहले क्यों नहीं थी? शिक्षिका ने जो बताया वह सुनकर मैं भौंचक्की रह गई। उन्होंने कहा कि उस स्कूल में लगभग 2200 लड़कियों के लिए मात्र 12 शौचालय और 12 मूत्रालय हैं जिनमें छुट्टी के वक्त लाइन लगी रहती है। सुबह एक घंटे पानी आता है, तब शौचालय धुलते हैं। बाकी समय ये बिना पानी के इस्तेमाल होते हैं और इसलिए धुलते वक्त दुर्गन्ध फैल जाती है और काफी समय तक वातावरण में व्याप्त रहती है। 'हमें तो इसकी आदत पड़ गई है', यह कहकर शिक्षिका ने अपनी बात समाप्त की।

इस स्कूल में 33 अतिथि शिक्षिकाएं और 19 नियमित शिक्षिकाएं थीं। अतिथि शिक्षिकाओं को प्रतिदिन के आधार पर पैसे दिए जाते हैं। उन्हें शिक्षक स्टाफ रूम में नहीं बैठने दिया जाता। वे एक अन्य कमरे में बैठती हैं जहां टूटे-फूटे डेस्क पड़े थे और कमरे की आधी से ज्यादा जगह लड़कियों को बांटे जाने वाले 'सेनेटरी नेपकिन' के डिब्बों से पटी पड़ी थी।

करीब 15 मिनट बाद मैंने कक्षाओं में जाना शुरू किया। बरान्डे से होकर कक्षा में जाने के लिए मुझे बरान्डे में कक्षा से बाहर निकाले गए कूड़े के ढेर पर पैर रखकर जाना पड़ा। पूछने पर मुझे बताया गया कि सफाई कर्मचारी मात्र दो हैं। इनमें से एक को सुबह आते ही, पानी रहते हुए, शौचालयों को साफ करना पड़ता है। इस बीच लड़कियां अपनी कक्षाओं में झाड़ू लगाकर कूड़ा बाहर निकाल देती हैं। यह कूड़ा तब तक बाहर

पड़ा रहता है जब तक दूसरी सफाई कर्मचारी उस कूड़े तक पहुंच कर उसे उठा नहीं लेती। इसलिए कभी-कभी तीन पीरियडों तक कक्षा के सामने और बरान्डे में कूड़े का ढेर पड़ा रहता है। इस स्कूल में यह मेरी एन्ट्री थी- कूड़े के ढेरों को लांघते हुए कक्षा में पहुंचना। स्कूल की हर कक्षा के 2 डेस्कों पर 3-4 लड़कियां बैठी हुई थीं और उनके बड़े-बड़े बस्ते जमीन पर, डेस्कों के दोनों तरफ, पसरे थे। जगह की इतनी कमी थी कि अपनी-अपनी किताब खोलकर आगे डेस्क पर रखना नामुमकिन था। लिखने की बात तो दूर की थी। इस सब झमेले में यदि कोई विद्यार्थी उल्टे हाथ से लिखने वाली थी, तो हालात खराब। सबसे अजीब बात यह थी कि जगह की कमी के बावजूद एक कोने के दो डेस्कों के बीच में ढेरों कूड़ा पड़ा था। मैंने पाया कि लगभग हर कक्षा में यही स्थिति थी यानी हर कक्षा का एक कोना कूड़ेदान में तब्दील हो गया था और उन दो डेस्कों पर कोई भी नहीं बैठता/बैठ सकता था। पूछने पर विद्यार्थियों ने बताया कि इस कोने से सफाई कर्मचारी अपने आप कूड़ा, चलती हुई कक्षा के दौरान, कभी भी आकर उठा लेती हैं। यानी हर कक्षा का एक कोना एक कूड़े का डिब्बा बना दिया गया था।

इस स्कूल की हर कक्षा के 3 से 4 तक सेक्शन थे और प्रति सेक्शन विद्यार्थियों की संख्या 80 से 110 तक थी। जितनी कक्षाएं मैंने देखीं उनमें 10 से 20 विद्यार्थी तक रोज अनुपस्थित थीं। कमरे में बमुश्किल 25 डेस्कों के जोड़े रखे जा सकते थे जिस पर ठूंस-ठूंसाकर 75 विद्यार्थी बैठ सकते थे। कई शिक्षिकाओं ने बताया कि जगह की प्रतिस्पर्धा में, जितने विद्यार्थियों को बैठने की जगह नहीं मिलती, वे या तो उस दिन कक्षा में खड़े रहकर समय बिताते हैं या घर लौट जाते हैं और अगले दिन अनुपस्थित रहते हैं। जगह को लेकर इनके आपस में तनाव और झगड़े भी होते हैं। दो हफ्तों में मैंने जितनी भी कक्षाएं देखीं उन सभी में 10-15 विद्यार्थी पीछे दीवार से टिके खड़े हुए या फर्श पर बैठे हुए मिले। जाहिर था कि वे अत्यन्त नाखुश दिखे। शिक्षक के लिए कक्षा में घूम पाने का तो प्रश्न ही नहीं था। कई शिक्षकों ने ईमानदारी से बताया कि इतनी बड़ी कक्षा में, जहां बमुश्किल विद्यार्थी बैठ पा रहे हैं, वहां पढ़ाने के नाम पर, ज्यादा से ज्यादा, किताब पढ़कर सुनाई जा पाती है। अन्यथा अधिकतर समय शोर को नियंत्रित करने में निकल जाता है।

यह भी जानकारी मिली कि दोनों महिलाएं, जो सफाई कर्मचारी हैं, वे 8.30-9.00 बजे तक ही स्कूल पहुंचती हैं। उन्हें इतने बड़े स्कूल, जिसमें तीस से ज्यादा कमरे, शौचालय, प्रिंसिपल का कमरा, स्टाफ रूम, स्कूल का मैदान इत्यादि रोज साफ करने का मात्र 2500 रुपये प्रति महीने दिए जाते हैं। जाहिर था कि प्रिंसिपल के कमरे के अतिरिक्त बाकी स्कूल में सफाई न के बराबर ही होती है। यह स्वभाविक है क्योंकि इतने बड़े स्कूल को साफ करना, झाड़ू भी लगा पाना, दो लोगों का काम नहीं है। पर सवाल यह है कि इतने बड़े स्कूल में मात्र दो सफाई कर्मचारी ही क्यों हैं और इन दोनों कर्मचारियों को न्यूनतम वेतन भी क्यों नहीं मिलता है? स्कूल की शिक्षिकाएं ऐसे प्रश्नों के उत्तर देने से बचती रहीं और लम्बी छुट्टी पर होने के कारण प्रिंसिपल से मुलाकात नहीं हो पाई।

दूसरे स्कूल में अपेक्षाकृत कम विद्यार्थी थे जिनकी कुल संख्या 1100 थी। यहां पर हर कक्षा के 2-2 सेक्शन थे। इस स्कूल में दो प्रयोगशालाएं, कम्प्यूटर और योग का कमरा, स्टाफ रूम, प्रिंसिपल का कमरा इत्यादि मिलाकर कुल 22 कमरों के अलावा दो सीढ़ियां और बड़ा मैदान था। 1100 लड़कियों के लिए कुल 9 शौचालय थे। इन सबकी सफाई के लिए मात्र एक सफाई कर्मचारी स्कूल में रखी गई है जिसका मासिक वेतन 3500 रुपये है। जाहिर है कि प्रिंसिपल का कमरा भर साफ-सुथरा था बाकी स्कूल के कमरों के कोनों में कूड़े के ढेर लगे थे। कई बार मेरे सामने, कक्षा के दौरान, अन्दर आकर सफाई कर्मचारी कूड़ा उठाकर ले जाती थीं। योग और कम्प्यूटर रूम में टूटी-फूटी कुर्सियां, कम्प्यूटर टेबलें और कम्प्यूटर के हिस्से बिखरे पड़े रहते थे। धूल की इतनी मोटी तहें थीं कि लगता था कि कभी कोई धूल साफ नहीं करता है।

शौचालय के आसपास के कमरों में पेशाब की दुर्गन्ध स्थायी रूप से रहती थी। इन्हीं में से एक कमरे में बी.एड. के विद्यार्थी बैठते थे जो वहां अपने स्कूल अनुभव के प्रशिक्षण के लिए चार महीनों तक जाते रहे। जैसा कि अपेक्षित है कि आधी छुट्टी के वक्त शौचालय ब्लॉक के सामने भीड़ लगी रहती थी। मैंने शौचालय ब्लॉक में घुसकर परिस्थिति का जायजा लेने की कोशिश की परन्तु असहनीय दुर्गन्ध के कारण अन्दर घुसने की हिम्मत नहीं हुई। बहुत-सी लड़कियों ने बताया कि वे कभी पेशाब के लिए भी नहीं जातीं क्योंकि बदबू से उनका दिमाग खराब हो जाता है। पर बदबू तो स्कूल के वातावरण में फैली हुई है, उसका क्या होगा?

तीसरा स्कूल पूर्वी दिल्ली का एक सर्वोदय विद्यालय है जो कक्षा 1-12 तक है। इस स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या तीन हजार से ज्यादा है और उम्र 6 वर्ष से 18-19 तक है। स्कूल में प्राइमरी या मिडिल स्कूल की भी कोई प्रधानाध्यापिका नहीं है और सभी जिम्मेदारी स्कूल की प्रिंसिपल की हैं। वे बताती हैं कि सर्वोदय विद्यालयों में कक्षा 6 से 8 तक दाखिले के लिए मना नहीं किया जा सकता चाहे कमरों में बैठने की जगह हो या न हो।

यह स्कूल तीन भवनों में बंटा हुआ है जिसमें एक चार मंजिला इमारत है और बाकी दो इमारत दो-दो मंजिला। स्कूल में 90 कक्षा-कक्ष हैं। इसके अतिरिक्त प्रिंसिपल का कमरा, 3-4 प्रयोगशालाएं, पुस्तकालय, स्टाफ रूम, बरामदे और स्कूल का मैदान है। इस विद्यालय में सरकारी नियम के अनुसार कुल 17000 रुपये प्रति महीने स्कूल की सफाई पर खर्च किए जा सकते हैं। नई नीतियों के तहत यह काम ठेके पर करवाया जाता है। इस स्कूल के लिए ठेकेदार 10000 रुपये में 4 सफाई कर्मचारी देता है। बाकी 7000 रुपये से वह सफाई का सामान खरीदता है और अपना लाभ निकालता है। ठेकेदार सफाई कर्मचारियों को ज्यादा पैसे देने को तैयार है यदि उसके पैसे बढ़ाए जाएं या फिर वह 4 की जगह 3 कर्मचारी रखे। जाहिर है कि सफाई नहीं हो पाती। शौचालय एक बार धुलते हैं। शौचालयों के आसपास के कमरों में बैठने वाले विद्यार्थियों के लिए दुर्गन्ध झेलने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं होता। प्रिंसिपल कहती हैं कि वे स्वयं स्कूल की गन्दगी से परेशान हैं, परन्तु उनके हाथ बंधे हैं। पहले दोनों स्कूलों में क्यों कम वेतन पाने वाले एक-दो सफाई कर्मचारी ही हैं यह इस विवरण से समझ में आया। वे यह भी बताती हैं कि जब से सैनेटरी नेपकिन लड़कियों को दिए जाने लगे हैं तब से शौचालयों में गन्दगी और बदतर हुई है। सफाई कर्मचारी महिलाएं कहती हैं कि उन्हें कभी-कभी गन्दगी देखकर उल्टी हो जाती है।

पिछले कुछ वर्षों में मैंने उत्तरी दिल्ली के लगभग 10 सरकारी स्कूल बहुत निकट से देखे हैं जिनमें मैं दिनभर में करीब 5-5 घन्टे कुछ दिनों से लेकर कुछ महीनों तक बिताती थी। इन सभी स्कूलों में शौचालयों की संख्या विद्यार्थियों की संख्या की तुलना में नगण्य थी। शौचालयों से लगातार दुर्गन्ध आना और (शौचालयों से सटे कमरों में) धुलने के वक्त दुर्गन्ध असहनीय हो जाना आम बात रही है। साथ ही कमरों के कोने या दरवाजे के पीछे कूड़े के ढेर, सुबह के वक्त कूड़े के ढेर पर से चलकर कक्षा में पहुंचना और आधी छुट्टी के बाद मध्यान्ह भोजन के परोसने से फैली गन्दगी से निबटते हुए कक्षा में जाना इत्यादि भी निरन्तर चलने वाला त्रास रहा है। हर कमरे में कूड़े के ढेर नजर आए और हर स्कूल के शौचालयों के बाहर विद्यार्थियों की भीड़ देखी। हर स्कूल में ऐसी लड़कियां मिलीं जिन्होंने कहा कि जब तक वे मजबूर न हो जाएं शौचालय का उपयोग नहीं करतीं। हर स्कूल में 2 के बैठने लायक व्यवस्था में 3 या 4 विद्यार्थी ठुंसे हुए मिले जिससे न वे किताब खोलकर सामने रख सकते थे न कॉपी रखकर लिख सकते थे। डेस्क कम थे या दरियां छोटी और फटी हुई थीं। हर स्कूल के कम्प्यूटर रूम कम्प्यूटर के कबाड़ जैसे थे जिन पर महीनों की धूल जमी थी। हर स्कूल के ब्लैक बोर्ड ऐसे थे जिन पर लिखा नहीं जा सकता था। ऐसा नहीं है कि जब पक्की नौकरी वाले सफाई कर्मचारी होते थे तब सब कुछ ठीक था। स्कूल और शौचालयों की सफाई एक हारी हुई लड़ाई लगती है। ये भी आपत्ति है, जो बहुत से शिक्षाविद करते हैं, कि कुछ लोगों की सनक के कारण शिक्षा का विमर्श

शौचालयों पर आकर रुक गया है। पर क्या बेहतर गुणवत्ता की शिक्षा की एक पूर्व शर्त, एक साफ-सुथरे स्कूल की उम्मीद करना गलत है?

नव-उदारवादी नीतियों के तहत सरकारी संस्थाओं में पिछले 10-15 वर्षों से तीसरी और चौथी श्रेणी के पदों को समाप्त करके उनके सभी काम ठेके पर दिए जाने लगे हैं। इनके तहत सुरक्षा और सफाई संबंधी सभी काम निजी कम्पनियां की जिम्मेदारी है। दिल्ली विश्वविद्यालय ने भी पिछले 15 वर्षों में ऐसी सभी नौकरियां निजी कम्पनियों और ठेकेदारों को सौंप दी हैं। मसलन अब विश्वविद्यालय के नए हॉस्टलों में माली, मेस स्टाफ, सेक्यूरिटि स्टाफ, सफाई स्टाफ इत्यादि सब ठेके पर रखे जाते हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय में बनी नई इमारतों की सफाई की जिम्मेदारी भी ठेकेदारों के हाथ में है। ये ठेकेदार अपने कर्मचारियों को न तो न्यूनतम वेतन देते हैं और न कोई अन्य सुविधाएं। मनमाने ढंग से इनके पैसे काटे जाते हैं और अत्यन्त शोषणकारी शर्तों पर, बिना निश्चित काम के घण्टों के, ये लोग काम करते हैं। इस व्यवस्था में विश्वविद्यालय इनका एम्प्लायर नहीं है, इसलिए वह न्यूनतम मजदूरी कानून तोड़ने का गुनहगार नहीं बनता। यही तो पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप की खूबी है।

इसी प्रकार स्कूलों में सफाई कर्मचारी को न्यूनतम वेतन मिले, इसकी जिम्मेदारी सरकार की नहीं होती। सरकार तो स्कूल के विद्यार्थियों की संख्या और इमारतों के क्षेत्रफल के आधार पर न्यूनतम टेंडर पर सफाई का खर्चा तय कर देती है। प्रिंसिपल कहती हैं, ऐसी व्यवस्था में स्कूल साफ रखना असंभव है, परन्तु सफलता के जश्न में उनकी आवाज केवल उनके खिलाफ कार्यवाही का रास्ता खोलती है। साक्षात्कार से पहले, स्कूलों की बदतर व्यवस्था का दोष, पहले मैं भी प्रिंसिपल का ही मानती थी। अब समझ में आया कि नव-उदारवादी नीतियों का इससे क्या रिश्ता है और प्रिंसिपल कितनी छोटी बना दी गई हैं।

इन स्कूलों के शिक्षकों से अनौपचारिक चर्चाएं करते हुए कई तरीके की बातें सामने आईं। एक तरफ यह दिखता है कि कई स्थायी शिक्षक पढ़ाने में बहुत कम रुचि लेते हैं और पढ़ाने की ज्यादा से ज्यादा जिम्मेदारी अतिथि शिक्षकों पर डाल दी जाती है। पर यह भी सच है कि विभिन्न सरकारी योजनाओं के कारण स्थायी शिक्षक अनेक तरह के गैर-शैक्षणिक कामों में जुटे रहने को मजबूर हैं जैसे किताबों, स्टेशनरी, यूनीफार्म, छात्रवृत्तियों आदि का वितरण, लाडली योजना और अन्य छात्रवृत्तियों के लिए खाते खुलवाना और फार्म भरवाना और अब हर महीने सेनेटरी नेपकिन बांटना। हजारों विद्यार्थियों के स्कूलों में इस तरह के काम, बिना अन्य प्रशासनिक मदद के शिक्षकों का बहुत समय खाते हैं। इस सबसे शिक्षकों का मनोबल गिरा है क्योंकि सख्त नियमों के तहत प्राथमिकता पढ़ाई से ज्यादा इन योजनाओं की है। पूर्वी दिल्ली के स्कूल की प्रिंसिपल ने बताया कि उनके 3000 विद्यार्थियों के स्कूल में हर वर्ष लगभग एक करोड़ रुपये छात्रवृत्तियों के रूप में बांटे जाते हैं। इसका वितरण और हिसाब-किताब रखना बहुत वक्त लेता है। ऐसे किसी भी काम में जरा-सी चूक होने या न भी होने पर - प्रिंसिपल के ऊपर कार्यवाही का खतरा मंडराता रहता है। इसी दौरान स्कूल की एक शिक्षिका ने बहुत तल्खी से कहा थाः 'सरकार चाहती है कि शिक्षक सब कुछ करेंः जनगणना, आर्थिक सर्वेक्षण, हर तरह के चुनाव करवाने से लेकर मध्यान्ह भोजन चखना और सेनेटरी नेपकिन बांटने तक। हमारी हैसियत यह है कि हम जरा चूके तो विभाग कार्यवाही करेगा और मीडिया इज्जत उतारेगा, बिना हमारी सुने। अब आप कहेंगी तो हम स्कूल की सफाई भी कर देंगे, पढ़ाना तो वैसे भी खानापूर्ति मात्र रह गया है।'

यह स्पष्ट है कि स्कूलों में बढ़ती हुई विद्यार्थियों की संख्या, संसाधनों की अपर्याप्ता, नव-उदारवादी नीतियों के तहत अत्यन्त शोषणात्मक शर्तों पर अतिथि शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों की नियुक्तियों ने गुणवत्ता के प्रश्न को पीछे धकेल दिया है। क्या 100 प्रतिशत नामांकन दर के जश्न में शिक्षकों और विद्यार्थियों की इन आवाजों का कोई महत्त्व आज की शिक्षा व्यवस्था में है? क्या इन विद्यार्थियों को कभी पढ़ाई का

साफ-सुथरा माहौल मिलेगा? क्या इन विद्यार्थियों में साफ-सुथरा स्कूल बनाने में योगदान देने के लिए प्रेरित करने का माहौल शिक्षा व्यवस्था बना पाएगी?

असल में यह अन्तिम प्रश्न एक अन्य संदर्भ में भी महत्त्वपूर्ण है। मुझे बताया गया कि उत्तरी दिल्ली की कई शालाओं में अभी विद्यार्थी अपनी कक्षा के कमरों में, रोल नम्बर के हिसाब से, स्वयं झाड़ू लगाते हैं। जिन स्कूलों में मैं थी वे दो शिफ्ट के स्कूल थे। वहां की लड़कियों ने मुझे बताया कि उन्हें अपने कमरों में झाड़ू लगाकर साफ रखना अच्छा लगता है परन्तु दिक्कत झाड़ू बचाने की है क्योंकि दूसरी शिफ्ट के लड़के झाड़ू गायब कर देते हैं (दो शिफ्टों वाले स्कूलों की अन्य कई समस्याएं हैं पर उन पर यहां चर्चा नहीं की जा रही है)।

प्रश्न यह है कि क्या विद्यार्थियों को अपने-आप अपने आसपास सफाई रखने के लिए प्रेरित करना सही है या गलत? शायद यह बेकार का सवाल लगे क्योंकि बहुत से लोगों को लगेगा इसका उत्तर हां के अलावा और क्या हो सकता है। परन्तु स्थिति इतनी सरल नहीं है। बहुत से शिक्षकों ने बताया कि अपनी कक्षा का कमरा साफ करने के लिए हम विद्यार्थियों से नहीं कह सकते क्योंकि हमें स्पष्ट निर्देश हैं कि 'बच्चे यह काम नहीं करेंगे'। पूर्वी दिल्ली के स्कूल की प्रिंसिपल ने बताया कि कई अभिभावक लड़ने के लिए आते हैं और कहते हैं कि आप हमारे बच्चों को न डांटेंगे और न ही उनसे कक्षा में झाड़ू लगवाएंगे।

यह स्पष्ट है कि सभी स्कूलों में सफाई कर्मचारी, जिन्हें स्वीपर कहा जाता है, दलित समुदाय के हैं। स्कूलों में गन्दे शौचालयों को जो, सैकड़ों विद्यार्थियों द्वारा प्रयोग में लाए जाते हैं, आज भी यही सफाई कर्मचारी साफ करते हैं। शौचालयों में आमतौर पर न समुचित प्रकाश की व्यवस्था होती है न पानी की। क्या जाति आधारित इस शोषणात्मक व्यवस्था (स्कूल और शौचालयों की सफाई) के स्थान पर, कोई ज्यादा बेहतर नवाचारी व्यवस्था जो इस काम को व्यवसायिक दर्जा दिलवाए, के बारे में सोचना सर्व शिक्षा अभियान के दायरे में नहीं आना चाहिए?

एक और सवाल जिस पर सोचने की जरूरत है। सेनेटरी नेपकिन जैसी चीजों को स्कूल के माध्यम से बंटवाने का वास्तविक उद्देश्य क्या है? क्या इसका आर्थिक पक्ष, एक कम्पनी या कुछ कम्पनियों को उनके उत्पाद के लिए बड़ा बाजार उपलब्ध करवाना, इसका प्राथमिक उद्देश्य प्रतीत नहीं होता है? किशोर विद्यार्थियों में शरीर के प्रति एक स्वस्थ समझ विकसित करना स्कूल का दायित्व है पर इसके बहाने निजी कम्पनियों को व्यापार उपलब्ध करवाना स्कूल का दायित्व नहीं हो सकता। आज की स्कूली व्यवस्था किस प्रकार एक तरफ तो नव-उदारवादी उद्देश्यों का पोषण कर रही है और दूसरी और जाति आधारित सोच का, यह विमर्श का गम्भीर विषय है। ◆